International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 28-10-2025, Accepted: 27-11-2025, Published: 12-12-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 140-144

# बदलते परिवेश में हिन्दी कहानी और आधुनिक जीवन–मूल्यों का ह्रास: एक अध्ययन

**आतिरा एम**
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, विमला कॉलेज, त्रिशूर, केरल, भारत

**सारांश**
यह शोध–पत्र समकालीन हिन्दी कहानियों के विश्लेषण के माध्यम से हमारे जीवन में आई आधुनिकता के बहुआयामी प्रभावों और उससे उत्पन्न संवेदना, मूल्य तथा मानवता के ह्रास के बारे में चर्चा करता है।
'शवयात्रा', 'डोमिन काकी', 'नो बार', 'आर्द्रा', 'परदेसी', 'पतझड़ की आवाज़', 'मानवता और रसगुल्ले', 'उसकी गिरफ़्तारी से पूर्व', 'मैकडॉनल्ड', 'कॉर्न सूप', 'प्रोग्रामिंग', 'उपग्रह में' और 'निद्राखोर' आदि कुछ कहानियों के माध्यम से पूंजीवादी बाज़ार का दबाव, जातिगत रूढ़ियों का प्रभाव, तकनीकी प्रगति का नकारात्मक पक्ष और पारिवारिक विघटन जैसी समस्याओं का उद्घाटन करने का प्रयास हुआ है। यह लोगों को यह चेतावनी देने का भी प्रयास करता है कि भौतिक सुख–सुविधाओं के पीछे भागकर हम मानवीय सहजता खोकर रिक्तता को जन्म दे रहे हैं। इसी रिक्तता के विरुद्ध हमें लड़ना होगा और मानवता का पुनर्स्थापन करना होगा।

**मूल शब्द:** समकालीन कहानी, आधुनिकता, संवेदनाएं, पूंजीवाद, अकेलापन, मूल्य परिवर्तन, जातिगत रूढ़ि, तकनीकी प्रगति – दुष्प्रभाव

## प्रस्तावना
आधुनिकता एक ऐसा शब्द है जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण हमारे जीवन से संबंधित है। असल में, आधुनिकता किसी भी विशेष क्षेत्र या समय से संबंधित नहीं कहा जा सकता। आधुनिकता एक सतत धारा है, जिसमें पुरानी चीज़ें—जो हमारे समाज और जीवन में चलती आ रही थीं—उसके बदले नया स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि यह अचानक होने वाला बदलाव है। बल्कि, यह तो एक तरह का विकास है, जो धीरे–धीरे होता आया है और आगे भी होता रहेगा। जैसा कि एक पुरानी कहावत है कि, जो कभी नहीं बदलता, वह तो सिर्फ बदलाव ही है। और इस बदलाव का प्रभाव जो हर क्षेत्र में हो रहा है, उसे हम आधुनिकता कह सकते हैं।
इसका प्रभाव साहित्य के क्षेत्र से भी अछूता नहीं है। उसमें भी समय–समय पर परिवर्तन होता ही रहा है। साहित्य की एक सशक्त माध्यम है कहानी, जो अपने आकार से परे पाठकों को चिंतन–मनन के लिए विवश करती है। कहानी, जो आधुनिक काल में विकसित होकर कई धाराओं के बाद अब समकालीन कहानियों की धारा में अग्रसर हो रही है, उसमें आधुनिकता से संबंधित नए–नए मुद्दों और उसके विश्लेषण से जुड़ी नई कहानियाँ आ रही हैं।
आज के नए संदर्भ में आधुनिकता, 21वीं सदी की द्योतक बन गई है। ऐसे ही एक आधुनिक युग में हम जी रहे हैं, जो अपना प्रभाव समाज, राजनीति, संस्कृति आदि से लेकर मानव मन की तंतुओं को भी झंकृत कर रहा है। हमारी बदली हुई परिस्थितियों के बीच आज के मानव और उसकी मानसिकता में इतना परिवर्तन आ गया है कि, वह कलाकारों के लिए नई कला–सृष्टि का एक द्वार खोल दिया है। भूमंडलीकरण, उपनिवेशवाद, उपभोक्ता संस्कृति, तकनीकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी का विकास, बेरोज़गारी, आर्थिक विपन्नता, पूँजीवादी दबाव, पारिवारिक विघटन आदि कई मुद्दों के बीच पिसने वाला मानव आज निर्दयी, स्वार्थी, कपटी (या कठोर) आदि रूपों में उभर रहा है। वह आत्मीयता एवं सामाजिक सरोकार से दूर होता जा रहा है।
डॉ लिसम्मा जॉन लिखते है कि "पारंपरिक मूल्य जैसे, प्रेम, त्याग, ममता, दया, मानवीय कल्याण, परोपकार, निस्वार्थता, सेवातत्परता, हार्दिक मनोभाव जैसे कुछ शाश्वत मूल्य मानव खून में मिले हुए है वे टूट रहे है और परिणाम स्वरूप उनके स्थान पर विद्वेष, भय, अविश्वास, कुंठा, हताशा, अकेलापन आदि का उदय हो रहा है।"[1]
इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि समकालीन कहानियों में बदले हुए परिवेश और उसके अनुरूप परिवर्तित होती मानव संवेदना को किस प्रकार प्रदर्शित किया गया है।

## मूल्य एक अवधारणा
भारतीय समाज में मूल्य एक प्रमुख स्थान रखते हैं। इक्कीसवीं सदी की तेजी से बदलती और बढ़ती परिस्थितियों में, 'मूल्य' शब्द चिंतन–मनन का एक महत्वपूर्ण द्वार खोल देता है।
मूल्य हर मानव के मन में विद्यमान रहते हैं, परंतु परिस्थिति के अनुकूल वे एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। मानव जिस समाज का अंग है, उसका प्रभाव उसके संस्कारों और मूल्य की समझ को बदल देता है। समाज की आवश्यकताओं के अनुसार मूल्य भी समय–समय पर बदलते रहते हैं।
रोहित मेहता का कथन इस संदर्भ में उद्धृत किया जा सकता है:

> "मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अंतर्दृष्टि है, एक अवधारणा है एक दृ ष्टिकोण है।"[2]

आज के नए संदर्भ में अगर देखा जाए तो भारतीय मूल्य के ढाँचे में स्पष्ट परिवर्तन देखा जा सकता है। आधुनिक युग के अनुरूप पारंपरिक मूल्य–दृष्टि भी एक नया मोड़ ले रही है।
मानव की बुनियादी और नैसर्गिक संवेदनाओं में जो ह्रास हुआ है, उसी के परिणामस्वरूप मूल्य की परिभाषा में भी एक तरह का विकार हम देख सकते हैं। मानवीय जीवन को सक्षम बनाने वाली जिन क्षमताओं को हम मूल्य कहते हैं, उनका पतन आज स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

## जातिगत और सामाजिक रूढ़ियों में संवेदना का तिरस्कार
भारतीय समाज जो अनादिकाल से ही चातुर्वर्ण्य पर आधारित है, आज भी यही जाति–व्यवस्था कहे या अनकहे रूप में हमारे बीच सक्रिय है। आज के इस नए युग में भी, खुद को नागरिक कहने वाले मानव के अंतर्मन में एक ऐसा कोना है, जिसमें जाति का

कीचड़ भरा पड़ा है। उसमें उथल–पुथल करके लोग समानता और मानवीय सत्ता की महत्ता को भूल चुके हैं।
सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि दलित शब्द का अर्थ क्या है? "दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। आज दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। अतः दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भ में अर्थ होगा, वह जाती समुदाय जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो।"[3] अगर हम इतिहास में देखें तो ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे जहाँ लोगों को अपनी जाति की वजह से यातनाएँ भोगनी पड़ीं। कबीर और रैदास जैसे प्रमुख संतों और लेखकों से लेकर आज तक, इस नई तकनीकी युग में भी यह समस्या हमारे समाज से मिटी नहीं है।

### 1. जाति की क्रूर सीमाएँ: जीवन और मृत्यु में अस्वीकार
ओम प्रकाश वाल्मीकि हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हैं। उनकी ख्याति का प्रमुख आधार उनकी रचनाओं में ज्वलंत दलित चेतना है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वयं भोगे हुए और समाज में देखे गए दलित समस्या को विषय बनाकर समाज की आँखें खोलने की चेष्टा की है।
ओम प्रकाश वाल्मीकि जी की कहानी "शवयात्रा," जो हिंदी साहित्य के लिए सुपरिचित है, उसके माध्यम से यह चौंकाने वाली सच्चाई दर्शाई गई है कि कथित निम्न जाति के भीतर भी बहुत सारे भेद हैं। कहानी के आरंभ में ही चमारों और बल्हारों की बस्ती है, जिसे जोहड़ से अलग किया गया है, जो उनके बीच एक सीमा की तरह काम करता है। वहाँ तक पहुँचने के लिए कोई मुख्य रास्ता नहीं है, और जब बारिश में जोहड़ भरता है तो पूरे गाँव से उनका संबंध कट जाता है।
सबसे बड़ी विडंबना यह है कि दलित लोगों का एक वर्ग इसे स्वीकार करने के लिए तैयार है। वे इन सब अन्यायों के हकदार के रूप में खुद को मानते हैं। इसीलिए सुरजा गाँव से बाहर जाने से इनकार करते हैं और नए घर बनाने की अनुमति लेने गाँव के मुखियाओं के पास जाते हैं। लेकिन आज भी समाज दलितों को पाँव के तले दबाए रखने के लिए विवश करता है। इसीलिए गाँव के मुखिया लोग सुरजा से कहते हैं कि "सिर उठा के खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गाँव से बाहर कर देंगे।" वहीं एक अलग वर्ग जो पढ़–लिखकर आगे निकलना चाहता है, उसे आगे जाने के लिए समाज कभी इजाज़त नहीं देता। कहानी में कल्लन ऐसे ही एक पात्र हैं, जो पढ़–लिखकर अपने और अपने परिवार की स्थिति को बेहतर बनाना चाहते हैं। लेकिन अंत में वह सब कुछ खो बैठते हैं। जब कल्लन की छोटी लड़की को बुखार हो जाता है तो, उसके इलाज करने से भी लोग इनकार करते हैं। आखिर जब वह बच्ची मर जाती है तो, उसकी शवयात्रा में भी भाग लेने से मना करते हैं। यह कहानी समाज के उस संवेदनहीन चेहरे का एक प्रमुख उदाहरण है, जो एक छोटी बच्ची को भी नहीं छोड़ता।

### 2. अस्पृश्यता का विष और अगली पीढ़ी का संस्कार
चित्रा मुद्गल जी की रचना "डोमिन काकी" में यह दिखाया गया है कि कैसे समाज अपनी नई पीढ़ी के अंदर जाति–व्यवस्था का भीषण विष भर देता है। यहाँ काकी को छूने वाले लड़के ने सबसे बड़ी वर्जित सीमा को पार कर दिया है, जिसके लिए उसे शारीरिक और धार्मिक झूठी शुद्धता की आवश्यकता पड़ती है। उसका गंगा स्नान करवाकर उसे बाहरी तौर पर तो शुद्ध किया जाता है, लेकिन आंतरिक तौर पर वही कीचड़ जो समाज में व्याप्त है, उसके भीतर घुसा दिया जाता है। और यही अमानवीय मूल्य उसे पीढ़ी दर पीढ़ी आगे ले जाने के लिए तैयार करते हैं।
जो अमानवीय व्यवहार उस बच्चे के परिवार वाले करते हैं, उसे ही समाज सामान्य मानता है। इससे आगे चलकर लोगों से सहज और मानवीय बर्ताव दंड के योग्य है, ऐसी ही सोच उस बच्चे के दिमाग में डाल दी जाती है। जो कीचड़ उसके चारों ओर फैला है, वही उस नन्हे बच्चे के व्यावहारिक नियम के रूप में सत्य बन जाता है। इस तरह, कहानी द्वारा यह दिखाया जा रहा है कि जातिगत चिंता या मनोवृत्ति कोई वंशानुगत संपत्ति नहीं है, बल्कि वह एक अर्जित विष है, जिसे समाज उसे पीने के लिए विवश कर देता है।

### 3. जातिगत पूर्वाग्रह और आधुनिक युग में कुचली हुई मानवता
जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखी गई कहानी "नो बार," समकालीन समाज की जातिगत मानसिकता को दर्शाती है। ऊपरी तौर पर प्रगतिशील चेतनाओं से फलने–फूलने वालों के अंदर भी जाति की जड़ मजबूती से अपना आधिपत्य स्थापित किए हुए है। कहानी में खुले मन से मानव की सच्चाई को देखने वाली नई पीढ़ी के प्रवक्ता के रूप में अनीता हमारे सामने आती है, जो अपने जीवनसाथी के चरित्र और ईमानदारी को उसकी जाति से ज्यादा मूल्य देती है। वहीं, अनीता के पिता स्वयं को एक प्रगतिशील के रूप में देखते हैं, किंतु उनके जातिगत संस्कार उनकी मानवीय संवेदना को चकाचौंध कर देते हैं। इस तरह, कहानी शिक्षित, संपन्न और आधुनिक दिखने वाले समाज के असली चेहरे को उसके मुखौटे के बाहर लाकर हमारे सामने रख देती है।
इस तरह के सामाजिक पूर्वाग्रहों ने मानवता के सबसे मौलिक स्वरूप को कुचला है। अलगाव, बुनियादी सुविधाओं से वंचना, मानवीय सम्मान और बराबरी के अधिकार का निषेध, सामाजिक बहिष्कार और अस्पृश्यता, आर्थिक शोषण—ये सब झेलकर लोग आज भी अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। और आधुनिकता के इस युग में भी इस भीषण व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आया है, जो शर्म की बात है। जाति के नाम पर हत्याकांड होने वाले ऐसे घटिया (या क्रूर) समाज के बीच मानवीय मूल्य तो न के बराबर हो जाता है।

### पारिवारिक और पीढ़ीगत संबंधों में संवेदनात्मक दूरी
परिवार जो समाज का ही नहीं, बल्कि मानव विकास का भी बुनियादी ढाँचा है, आधुनिक जीवनशैली के कारण अब उसकी संरचना में बदलाव आ गया है। जो लोग संयुक्त परिवार में एक साथ रहकर प्यार और खुशी से जी रहे थे, अब एकल परिवार (या अणु–कुटुंब व्यवस्था) के कारण उनके मन को अकेलापन, कुंठा, घुटन और दमन ने घेर लिया है। बदली पारिवारिक संबंधों के बारे में प्रशस्त लेखक डॉ शिवप्रसाद सिंह लिखते है कि "आज भारतीय परिवार काफी बदल गया है। आज के परिवार के सामने न तो रामायण आदर्श है न महाभारत ही। सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के ही समान एक अजीब कश्मकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या, कलह, और तू तू, मैं मैं दौर से गुजर रहा है।"[4]

### 1. विस्थापन और अकेलापन
मोहन राकेश जी की प्रसिद्ध रचना है 'आर्द्रा', जिसमें शहरी जीवन और उसके बीच व्याप्त मानवीय अलगाव, व्यक्तिगत अकेलापन और सारहीन यांत्रिक जीवनशैली को दर्शाया गया है। दो बेटों के होते हुए भी माँ (बच्चन) अकेलापन महसूस करती है। छोटा बेटा बिन्नी, जो माँ के प्रति उदासीन और लापरवाह है, वह माँ की भावनाओं को अनदेखा कर देता है। कहानी में बताते हैं कि माँ को वहाँ की भाषा भी नहीं आती और जिस परिस्थिति में वह रहती है, उसमें वह सुरक्षा महसूस नहीं करती। फिर भी वह बेटे के लिए सब कुछ सह लेती है, लेकिन वही बेटा है कि आए तो घर आ गए, नहीं तो जहाँ हुए पड़े रहे।
वहीं दूसरी ओर, बड़े बेटे के साथ रहकर वह एक मेहमान जैसा महसूस करती है। बड़े बेटे के घर में सब कुछ व्यवस्थित है। सब

काम और सब लोग एक घड़ी की सूई की तरह बिना किसी रुकावट के चल रहे हैं। घर के चपरासी से लेकर बच्चों तक सब नियमबद्ध चल रहे हैं। लेकिन किसी को भी आपस में बात करने की फ़ुरसत नहीं, सभी लोग व्यस्त हैं। जिससे जीवन का रस और ताज़ापन धीरे–धीरे ठंडा होकर जम जाता है। वहीं माँ को धीरे–धीरे घुटन होने लगती है। अंत में वह स्वयं अपने बेटे से कहती है कि वह वापस जाना चाहती है। और इस पर भी बेटा कुछ भी नहीं कहता।

## 2. आर्थिक मूल्य बनाम पारिवारिक मूल्य

ममता कालिया की एक प्रमुख रचना 'परदेसी' कहानी है, जिसमें अपने परिवार एवं देश को छोड़कर बाहर जाने वाले एक परिवार को दिखाया गया है। आधुनिक युग में बेरोज़गारी इतनी बढ़ गई है कि पढ़े–लिखे युवा पीढ़ी को भी आजीविका कमाने के लिए बाहर जाना पड़ता है। कहानी में बड़ा भाई बताता है कि "यहाँ से चालीस गुनी तनख़्वाह मिलेगी, घर का सारा दरिद्र धुल जाएगा।" अपने जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए लोग अपना देश, परिवार सब कुछ छोड़कर बाहर जाकर बसने के लिए तैयार हैं। लेकिन कोई भी यह नहीं सोचता कि एक अलग देश में हमें द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में ही देखा जाएगा। परिणाम यह है कि तीन देशों में रहकर भाई–बहन एक–दूसरे के लिए तरसते हैं। यह कहानी दिखाती है कि कैसे सुख–सुविधा की लोलुपता मानव के भावनात्मक संबंधों को तोड़–मरोड़ रही है।

इस दौर में लोगों को अपना देश और यहाँ की परिस्थिति नरक तुल्य लग रही है। उन्हें पश्चिमी सभ्यता और वहाँ की जीवनशैली आकर्षित कर रही है। वहाँ के नंदनवन की तुलना में हमारी संस्कृति और हमारा देश नगण्य और कमज़ोर लग रहा है।

लेकिन नीरद इससे अलग है और अपने देश छोड़ने का विरोध करता है। वह अपनी रचनात्मकता और संस्कृति के प्रति लगाव से रहने वाले एक आदर्श युवा के रूप में सामने आता है। "रोटी के लिए कोई अपनी मिट्टी नहीं छोड़ता" कहकर वह अपनी वतन के प्रति आत्मीयता दिखाता है।

रिचर्ड के आगमन के समय भाभी कह रही हैं कि घर की सफाई ज़ोर से करना होगा, ताकि हमारे जीवनशैली को पश्चिमी लोगों की जीवनशैली से नीचा न दिखाया जाए। लेकिन हमारी संस्कृति की 'अतिथि देवो भवः' की भावना में कोई कमी नहीं है। नीरद की पत्नी घर को मेहमान के लिए उसके पसंद के अनुकूल बना रही है, खाने–पीने में भी वह कोई कमी नहीं छोड़ती।

परिवार के प्रेम, जुड़ाव, शिक्षा आदि दिखाने वाली यह कहानी पारिवारिक गरमाहट भी दिखाती है। तीन पीढ़ियों का एक साथ रहना एक परिवार में ताज़ापन और अपनापन को भी दर्शाता है।

## 3. अकेलापन और बुढ़ापे की संवेदनशीलता

आधुनिक संदर्भ में पीढ़ी अंतराल एवं पारिवारिक अलगाव को दर्शाने वाली एक मार्मिक कहानी है, इक़बाल मजीद की 'पतझड़ की आवाज़'। आर्थिक सफलता और भौतिक जीवन के लिए मुल्कों–मुल्कों फिर रहे बच्चे, अपने माँ–बाप को देखने के लिए आना, सिर्फ एक औपचारिक कर्तव्य के भाँति देखते हैं। बुढ़ापे की अवस्था में गहरी भावनात्मक असुरक्षा एवं उपेक्षा से गुज़र रहे माँ–बाप अपने बच्चों की भौतिक उपस्थिति से ज़्यादा भावनात्मक उपस्थिति चाहते हैं। आत्मकेंद्रित जीवनशैली में पनपने वाली आधुनिक पीढ़ी के बीच वृद्ध माता–पिता के जीवन में जो मानवता का ह्रास होता है, यह कहानी उसी की मार्मिक गाथा है।

आधुनिक समाज में व्यक्ति, परिवार के बीच होते हुए भी, संवेदनाओं के धरातल पर अकेला है। लोगों का जीवन कर्तव्यों के निर्वाह की यांत्रिक प्रक्रिया बन गया है, जहाँ प्यार, देखभाल और समझ जैसे मूलभूत मानवीय भावों का पूर्ण अभाव है। भौतिकता ने मानवीय मूल्यों पर हावी होने का प्रयास किया है, जिससे पारिवारिक आत्मीयता और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव ही हिल रहा है।

## पूँजीवादी दबाव में संवेदना का बाज़ारीकरण और उपयोगितावाद

आज के ज़माने की भोगवादी प्रवृत्ति तो बाज़ारीकरण और पूंजीवाद के विकास के लिए एक उचित पृष्ठभूमि तैयार कर रही है। लोग इसी बाज़ारीकरण के मायालोक में खरीददारी के आधिक्य के कारण अपने सुध–बुध खो बैठते हैं। बाज़ारीकरण अपने जादुई जालों से लोगों में कृत्रिम आवश्यकताओं के लिए लालच पैदा कर देता है। यह एक तरह से खरीददारी की लत को बढ़ावा देती है।

ऐसी एक व्यवस्था में, लाभ और उपयोगिता ही सभी रिश्तों के निर्धारक बन जाते हैं। रिश्ता अब मानवता से ज़्यादा लेन–देन की व्यवस्था पर आकर रुक गया है। इस व्यवस्था में मुनाफ़े को ज़्यादा महत्व दिया गया है, इसलिए मानव के नैतिक एवं राजनीतिक मूल्यों का ह्रास हो जाता है। यह लोगों के बीच मानवता के बदले लालच और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है।

## 1. 'मानवता' का औपचारिक बाज़ारीकरण

मानवीय संवेदना के पाखंड को हास्य के माध्यम से उद्घाटित करने वाली हरिशंकर परसाई जी की व्यंग्यात्मक रचना है, "मानवता और रसगुल्ले"। इसमें दिखाया गया है कि आज के ज़माने में 'मानवता' शब्द सिर्फ एक नाम तक सीमित है। उसके पीछे जो भावनात्मक और अनुभूति से भरे पक्ष रहते थे, वो सब आज मिट गया है।

आज जो लोग अधिकारों को अपनी हाथों की कठपुतली की भाँति उनसे खेलते हैं, उनके लिए मानवता एक मज़ाक जैसा है। ऐसे विशिष्ट वर्ग जो विलासिता में डूबे रहते हैं, अपने सुविधाजनक परिस्थितियों में रहकर ही मानवीय समस्याओं पर बड़े–बड़े विमर्श करते हैं और घोषणाएँ जारी करते हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति साधारण जनमानस के बीच रहकर उनकी असुविधाओं के बारे में आवाज उठाने के लिए तैयार नहीं होता।

ऐसी ही एक चर्चा हम इस कहानी में देख सकते हैं, जहाँ सब लोग आपस में जो बात कर रहे हैं, उस पर बिना समय लगाए ही सहमति प्रकट कर रहे हैं। "मानवता मर रही है," एक ने सिर्फ यही कहा और बाकी लोग उस पर तुरंत ही सहमत हो गए। इसमें कोई चिंतन–मनन की ज़रूरत ही नहीं सूझती। वे अधिकारी वर्ग सिर्फ लोगों को भटकाने के लिए एक नाटक रच रहे हैं, जिसमें साधारण लोग आशा भरके एक बेहतर भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं। लेकिन उन चर्चाओं में जहाँ संवेदना और मानवता के बारे में बड़ी–बड़ी भाषणबाज़ी हो रही है, वह तो सिर्फ शब्दों तक ही सीमित है। उससे आगे व्यावहारिक स्तर पर उससे कुछ भी लाभ नहीं होता।

कहानी में रसगुल्ले को ही सम्मेलन की बहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं। यहाँ लेखक व्यंग्यात्मक रूप से हमारे विशिष्ट व्यक्तियों की ओर इशारा कर रहे हैं और बताते हैं कि कैसे इतने संवेदनशील विषय पर तीन दिन तक चर्चा करके भी एक भौतिक वस्तु को विशिष्ट माना जाता है। यहाँ पर मानवता को एक कड़वी दवा की भाँति दिखाया गया है, जिस पर चर्चा करने के बाद ही वे रसगुल्ले का रस चूस रहे हैं।

आज पूंजीवादी दुनिया के बीच छिप रही मानवीय उदासीनता को उजागर करने का प्रयत्न हम इस कहानी में देख सकते हैं।

## 2. आर्थिक तनाव में रिश्तों का विखंडन

मध्यवर्गीय जीवन की समस्या को दर्शाने वाली ज्ञानरंजन जी की एक प्रसिद्ध कहानी है, 'उसकी गिरफ़्तारी से पूर्व'। समकालीन संदर्भ में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक असुरक्षा के बीच दिशाहीन होकर खो गए इसका नायक और उसकी मानसिकता इसका प्रमुख विषय है। उसकी परिस्थिति कैसे उसके और उसके परिवार के बीच के संबंध को प्रभावित करती है, इसका चित्रण भी इसमें हुआ है।

मानवीय संवेदना के ह्रास में एक बड़ा हिस्सा हमारे समाज का ही है। सामाजिक और आर्थिक दबाव के कारण मानव आज यंत्रवत जीवन जी रहा है। उसे अपनी और अपने परिवार की आजीविका चलाने के लिए दिन भर काम करना पड़ रहा है। इन सबके बीच वह हँसना भूल जाता है, उसके प्रति जो संवेदनात्मक आँखें देख रही हैं, वह सब अनदेखा कर देता है। इस व्यस्तता भरे माहौल में वह सिर्फ एक द्वीप की तरह अकेला रह जाता है।

ऐसे ही एक माहौल में नायक शेयर बाजार (Share Market) में अपने दोस्त के भरोसे, उसके जैसा जीवन जीने का स्वप्न देखकर इन्वेस्ट करता है और खुश हो जाता है। यहाँ उसमें जो खुशी उत्पन्न हो रही है, वह वास्तविक नहीं है। वह तो सिर्फ भविष्य में होने वाले मुनाफ़े के बारे में सोचकर ही हवा में उड़ने लगता है। वही नकली सपने उसे आगे जीने के लिए प्रेरित करते हैं। पैसे की लालच उसे इतना घेर लेती है कि वह धीरे–धीरे अपनी कुंठाग्रस्त मानसिकता से आगे निकलकर अपने परिवार से बात करने के लिए तैयार हो जाता है।

लेकिन शेयर बाजार का अचानक गिरावट उसे अंदर से उलझा देता है। उसमें जो मानवीय मूल्य बाकी रह गए थे, वह सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं। इस आर्थिक क्षति का सामना करने के लिए उसके पास धीरज नहीं होता।

इस सब का प्रभाव उसके परिवार पर ही पड़ता है। जब उसका छोटा बच्चा उसके पास प्यार से आता है तो उसे गले लगाने के बजाय उसे थप्पड़ मारता है। यहाँ पर हम देख सकते हैं कि, समकालीन अर्थतंत्र एवं पूंजीवादी दबाव कैसे एक आदमी की आँखों पर पट्टी बाँध रहे हैं। उसे एक छोटे बच्चे का भी फिक्र नहीं। उसका मन हमेशा चिंतित रहता है। उसके सामने वाले का आदर करना, प्यार करना—यह सब वह नहीं जानता। उसे तो सिर्फ पैसा चाहिए, जो आज के ज़माने की एक कड़वी सच भी है। उसके पीछे ही आज दुनिया भाग रही है, उसी से आज समाज में प्रतिष्ठा पाते हैं।

### 3. भावनात्मक संबंध और शोषण का नया रूप

आधुनिक कॉरपोरेट दुनिया और शहरी जीवन के बीच दैनिक जीवन चलाने के लिए परिश्रम करने वाले स्तरों की कहानी है चित्रा मुद्गल जी की 'मैकडॉनल्ड'। आज अपनी आजीविका चलाने के लिए लोगों को पूरा समय काम करना पड़ता है। इसमें स्त्री या पुरुष का कोई भेदभाव नहीं। उन्हें आराम की फुर्सत तक नहीं मिलती, जो कि मानव के मूलभूत अवकाशों में से एक है। जो थकावट उन्हें महसूस होती है, वह केवल बाहरी या भौतिक नहीं, बल्कि आंतरिक या मानसिक तौर पर भी वे थकी हुई हैं। उनमें आगे जाने की ताकत ही नहीं है। वे सब कुछ से दूर भागना चाहती हैं, लेकिन उनकी विवशता उन्हें यह करने से रोक रही है। प्रेम जो भावनाओं में उच्च स्थान पर माना जाता है, उसका विकृत रूप भी हम देख सकते हैं। आज मानव का प्रेम, त्याग की अपेक्षा 'अपनाने' (या उपभोग करने) की सोच पर ज़्यादा आधारित है। हर कुछ बनावटी है। लोग आपस में ऐसे अभिनय कर रहे हैं जैसे संपूर्ण जीवन ही उनके लिए एक नाटक रच डाला हो।

कहानी की प्रथम पात्र जो शादीशुदा होकर भी एक अन्य पुरुष से रिश्ता संभाल रही है, लेकिन उस पर भी वह पूरी तरह समर्पित नहीं। वह तो उसे सिर्फ एक सलाद के रूप में देखती है, जो मेन कोर्स डिश के साथ मिलता है। वहीं दूसरी ओर अगली लड़की है, जो अपने प्रेमी से छोटी–से–छोटी बात पर झगड़ा करके रिश्ते को समाप्त कर देती है। वह तो सिर्फ दिखावे के लिए प्यार करती थी। सिर्फ बाह्य रूप पर ही वह आकर्षित थी, इसलिए उसे छोड़ना उसके लिए आसान सी बात थी। तीसरी लड़की तो अपने साथी को एक बस स्टॉप जैसा देखती है—कहीं से निकलकर कहीं जाने के बीच रुकने के लिए एक जगह, वही है उसके लिए वह रिश्ता। लेकिन इन कहानियों में सिर्फ स्त्री पात्र ही नहीं, पुरुष पात्र भी कपटी और बनावटी रूप में दिख रहे हैं। कहानी में हम देख सकते हैं कि कैसे पुरुष, महिला के उद्धारकर्ता या रक्षक बनने का प्रयास खुद करके, उस पर अपना अधिकार फैलाने की सोच रहे हैं। उस पर स्वामित्व स्थापित करके उसे एक वस्तु की तरह देख रहे हैं। समाज में उपयोगितावाद इतना बढ़ गया है कि उसे असली वस्तु और आदमी में फ़र्क नहीं दिख रहा।

लेकिन कहानी के अंत में जब तीसरी लड़की इस तरह के रिश्ते के बंधन को तोड़कर आगे निकलती है, तो वह असल में उसके ही नहीं संपूर्ण स्त्री जाति की मानवता एवं स्वतंत्रता की घोषणा की तरह हम देख सकते हैं।

यह पूँजीवादी शहर में श्रमजीवी महिला की जटिल संवेदनात्मक अवस्था को दर्शाती है। यह स्थापित करती है कि मानवता की खोज केवल आर्थिक स्वतंत्रता में नहीं, बल्कि संबंधों के भीतर शोषण से मुक्ति और व्यक्तिगत 'जगह' के अधिकार में निहित है।

### 4. बाज़ार का मकड़जाल और संवेदनात्मक अलगाव

आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति, जो मानवीय संबंधों में ह्रास और विघटन का कारण बनती है, वही आज रिश्तों में आए परिवर्तन के मूल रूप में देखी जा सकती है। मानवता एवं संवेदना के स्थान पर आज रिश्तों में स्वार्थपरता एवं एक–दूसरे को दोष देना ही हम देख रहे हैं। शर्मिला बोहरा जालन की कहानी 'कॉर्न सूप' ऐसी ही एक कहानी है, जहाँ भावनाओं के बदले बाज़ारी संस्कार के विकृत रूप हमारे सामने आते हैं। यह कहानी आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति के बीच मानवीय संबंधों के क्षरण और संवेदनात्मक रिक्तता को गहराई से दर्शाती है। कहानी का मूल विषय यह दिखाना है कि कैसे भौतिक सुख–सुविधाओं का आकर्षण पति–पत्नी के रिश्ते में रिक्तता उत्पन्न करके उसे छिन्न–भिन्न कर देता है।

कहानी के मुख्य पात्र सुमन और राजीव, मुंबई जैसे शहर की मॉल संस्कृति के जाल में फँस गए हैं। अत्यधिक एवं अनावश्यक खरीदारी, जो आज की उपभोक्तावादी संस्कृति का एक रोग है, वह उन्हें भी पकड़ गया है। वे दोनों अपने पैसे का सूझ–बूझ खोकर, हर दिन मॉल घूमते हैं और सब कुछ खरीद डालते हैं। राजीव के पास जब पैसे की कमी होती है, वह उधार लेकर सामान खरीदने को तैयार हो जाता है।

लेकिन यही खरीदारी आखिर उनके रिश्तों में दरार पैदा करती है। राजीव को जब तक होश आता है, तब तक वह उस जाल में पूरी तरह फँस चुका था। आपसी समझदारी और सहयोग के बदले राजीव खुद हाथ खड़े करके (या दोष त्यागकर) इन सब अधिक खर्चों का दोषी अपनी पत्नी को मानता है। इससे भी ज़्यादा अपनी हद पार करके वह सिर्फ पत्नी को ही नहीं, उसके घरवालों को भी भला–बुरा कह देता है। यहाँ पर राजीव का पुरुषवादी दृष्टिकोण सभ्यता के मुखौटे से बाहर आता है। यही सच सुमन की गरिमा और आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है।

तनाव की इस स्थिति में लोग अपनी व्यावहारिक बुद्धि छोड़कर अपने को निर्दोष स्थापित करने की चेष्टा कर रहे हैं। आज के ज़माने में गलती को गलती मानना और उस पर पश्चात्ताप करना किसी को नहीं आता। सब लोग अपना नाम ऊँचा रखने के लिए निर्दोषों पर आरोप लगा रहे हैं।

आज सच्ची संवेदनाओं के बदले जीवन दिखावा और ईर्ष्या से भर जाता है। लोग आज अपने लिए नहीं, समाज के लिए जीते हैं। उसकी शर्तों को पूरा करने के लिए लोग अपना जीवन कृत्रिम बना रहे हैं। इसके बीच समय, समाधान, प्यार, ईमानदारी, खुशी सब कुछ न के बराबर हो जाता है।

### तकनीकी और भौगोलिक अलगाव में संवेदना का शून्य

तकनीक को तो भौगोलिक दूरी को कम करके लोगों को आपस में जोड़ने के कार्य के लिए प्रधानता दी गई थी। लेकिन आज यही तकनीकी विकास लोगों के बीच दूरी की सीमा का कारण बन गया है। लोगों की शारीरिक उपस्थिति एवं सामूहिक जुड़ाव

में कमजोरी आ गई है। गहरी मानवीय संवेदनाओं की जगह पर ऑनलाइन रील या उसके एक 'लाइक' तक रिश्ते सिकुड़ रहे हैं। इंद्रनाथ चौधरी जी अपने लेख साहित्यिक संस्कृति और संचार व्यवस्था में कहते है की, "मगर साहित्य के क्षेत्र में स्थिति बदलने में देरी नहीं हुई। दरअसल बीसवीं शती के चौथे–पाँचवें दशक में जब हमारी उम्र के लोग बड़े हो रहे थे तब इस शतक को आधुनिकता का अग्रदूत मानने में अमूमन सभी गर्व महसूस करते थे। यह आधुनिकता टेकनॉलॉजी से जुड़ी आधुनिकता थी जिस ने हमें अंततः मात्र उपभोक्ता (consumer) बना दिया है और स्वाभाविक जीवन से हमें काट दिया है।"[5]

## 1. संवेदनाओं पर काबू: रोबोटिक अस्तित्व की अमानवीयता

जैसा कि हम जानते हैं, आज के युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है तकनीक का विकास। आज हर एक क्षेत्र को भी अगर हम देखें तो उसमें तकनीक का योगदान महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यही तकनीक, जो मानव श्रम को कम करने के लिए लाई गई थी, वही आज श्रम के साथ–साथ संवेदनाओं को भी कम कर रही है।

जैसे कहानी में कहते हैं, मानव विकास का एकमात्र बाधा संवेदनाओं को माना जाता है। रीता और अंकित, मानव तरक्की में अनुसंधान कर रहे दो नव–वैज्ञानिक, मानव के आदि इतिहास और उसके विकास के हर एक पड़ाव को अजीब और समय खराब करने वाला मानते हैं। खाना और सोने की 'गोली' खाने वाले उनके लिए, माँ द्वारा बच्चे को नौ महीने पेट में रखना और उसे दूध पिलाना भी अनावश्यक लगता है। जैसे ही एक यंत्र बिना किसी संवेदना से सिर्फ अपने काम पर ही ध्यान देता है, वैसे ही हैं आज के मानव जिन्हें और किसी से कोई मतलब नहीं। वे सिर्फ काम करते जाते हैं।

लेकिन इन्हीं परिस्थितियों पर व्यंग्य करने के साथ–साथ लेखक असलीयत भी याद दिलाते हैं कि, लोग अपनी प्रकृति, संवेदना, समाधान, आशा आदि के बिना रह नहीं पाएँगे। प्रोफ़ेसर द्वारा चाँद देखकर अपनी आशाओं और बीते हुए दिनों को याद करना, रीता द्वारा बिछुड़े प्रेमी की कविता से अस्वस्थ होना—यह सब इसके ही उदाहरण हैं। कहानी का निष्कर्ष यह स्थापित करता है कि मानवता एक ऐसी प्रकृतिजन्य शक्ति है जिसे प्रोग्राम द्वारा हटाया नहीं जा सकता।

## 2. मानवीयता और निर्जनता का संघर्ष

आपके द्वारा कहानी 'उपग्रह में' का विश्लेषण, मानवीय अलगाव और प्रकृति के महत्व के संदर्भ में, बहुत ही सुंदर और दार्शनिक है। आपने कहानी के प्रतीकात्मक पहलुओं को सफलतापूर्वक उजागर किया है।

आज हर एक व्यक्ति समाज में एक द्वीप की तरह जीवन जी रहा है। एक ही घर में रहकर भी, लोग एक–दूसरे से अपरिचित हैं। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी अपनी–अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। कहानी के केंद्रीय पात्र नूतन, जो एक नए उपग्रह की खोज कर चुका है, वहाँ जाकर अपनी प्रेयसी के साथ अकेला जीवन व्यतीत करना चाहता है। वह आज के मानव का प्रतीक है, जो सामाजिक बंधनों, मानवीय आपसी प्रेम से बिछुड़कर अकेला अपना जीवन जीना चाहता है।

कहानी का केंद्रीय विमर्श, वैज्ञानिक नूतन द्वारा चंद्रमा और पृथ्वी के मध्य खोजे गए उपग्रह पर जीवन बसाने के स्वप्न से आरंभ होता है। लेकिन उसकी वधू वहाँ उस नए उपग्रह के घर में रहना नहीं चाहती। उसे वहाँ नींद नहीं आती, बल्कि घुटन महसूस होती है। उसकी अंतरात्मा इस नए लोक को अपनाने के लिए तैयार नहीं है। उसे अपनी प्रकृति चाहिए, उसके परिवार, दोस्त और लोग चाहिए, जिसके बिना वह नहीं रह सकती।

कहानी में जब वधू वनस्पति लोक की अमर प्राणी बन जाती है, तो वह कहती है कि उन पेड़ों में मानवों से ज़्यादा संवेदनाएँ हैं। उनमें स्त्री–पुरुष जैसी कोई अलगाव नहीं है। वह एक मुक्त अमर लोक है, जहाँ सिर्फ़ प्यार ही है। यहाँ हम देख सकते हैं कि कोई भी इंसान अपने परिवेश के बिना जी नहीं पाता। उसका सच्चा जीवन इन्हीं प्रकृति और उसके संतानों के बीच ही है। उसके बिना वह अधूरा रह जाता है।

'उपग्रह में' कहानी यह सिद्ध करती है कि मानवता का सार तकनीकी विजय या भौतिक निवास में नहीं है, बल्कि असीमित संवेदना में निहित है।

## 3. बाज़ारीकरण और मानवीय आवश्यकता का विलोपन

राजेश जैन की विज्ञान और संवेदना पर आधारित एक प्रमुख कहानी है 'निद्राखोर'। इस कहानी में नींद, जो मानव की नैसर्गिक प्रक्रिया है, उसे एक विक्रेय वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस पर काम करने वाला विवेक, जीवन की सहज प्रक्रिया को भी तकनीक की सहायता से बेचकर उससे मुनाफ़ा पाने की लालच में है। मुनाफ़े को सर्वोपरि रखने वाला विवेक, जो नए युग का प्रतिनिधि है, वह मानवता को आर्थिक सफलता के समक्ष गौण कर देने की चेष्टा कर रहा है।

वहीं विवेक के पिता, जो कहानी में प्रकृतिवाद और नैसर्गिकता के प्रवक्ता बनकर आते हैं, वह अपने बेटे को सुधारना चाहते हैं। वह सहज नींद और कृत्रिम नींद के अंतर (या वैषम्य) को समझाते हैं।

'निद्राखोर' कहानी एक चेतावनी है कि आर्थिक प्रगति के नाम पर मानवीय सहजता को खोना, एक ऐसी गहरी संवेदनात्मक रिक्तता को जन्म देता है जिसे कोई भी वैज्ञानिक उत्पाद नहीं भर सकता। यह कहानी मानवता के मूल को प्रबंधन और तकनीक के कृत्रिम बंधनों से मुक्त कर प्रकृति की सादगी में तलाशती है।

## निष्कर्ष

यह शोध समकालीन हिन्दी कहानियों के एक अध्ययन के माध्यम से यह दिखाने का एक प्रयास है कि आधुनिकता ने कैसे जीवन–शैली एवं मानवीय संवेदना, मूल्य और संरचना पर प्रभाव डाला है। समकालीन कहानियाँ जिस नए यथार्थ का खुलेआम चित्रण करती हैं, उसके साथ–साथ उसमें दबी पारंपरिक मूल्य, प्रेम, त्याग जैसी नैसर्गिक भावनाओं आदि का उद्घाटन भी होता है।

पूंजीवादी बाज़ार के दबाव, तकनीकी उन्नति, जातिगत भेदभाव, पारिवारिक विघटन आदि कई कारणों से गुज़रकर संवेदनाओं ने आज अपना रूप बदल दिया है। आज ज़्यादातर ऐसी संवेदनाएँ दिखावा बन गई हैं। औपचारिकता से आगे बढ़कर उनका जो मूल्य था, वह लुप्त हो चुका है। इसलिए, आगे हमें अपनी ही मानव जाति के संरक्षण के लिए इन सब से गुज़रकर मानव की मानवता और संवेदनाओं को पुनरुत्थान करने की ज़रूरत है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. ममता कलिया की कहानियों में मूल्य परिवर्तन, डॉ. लिसम्मा जॉन, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार मथुरा, सन् 2021, चह –59
2. हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ मोहिनी शर्मा, साहित्यगार, 1986, चह –283
3. समकालीन हिंदी साहित्य: विविध परिदृश्य, प्रो प्रमोद कोवाप्रत, अमन प्रकाशन, कानपुर, सन् 2022, चह– 97
4. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डॉ शिवप्रसाद सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, चह –36
5. समकालीन भारतीय साहित्य – साहित्यिक अककडेमी के द्विमासिक पत्रिका, गिरधर राठी, वर्ष 21, अंक 91: सितंबर –अक्टूबर 2000, चह –9